वेदोऽखिलोधर्ममूलम्

वेद प्रकाश

मासिक पत्र (6-7 प्रतिमाह) मूल्यः ५ रुपये मई २०१४

कुल पृष्ठ संख्या 20, वजनः 40 ग्राम

अन्तःपथ

परिश्रम का कोई विकल्प नहीं होता *(डॉ. सूर्यदेव शास्त्री')*	३ से ८
धर्म के असली रूप को समझें *(डॉ. पूर्ण सिंह डबास)*	८ से १८

प्रार्थना

सबसे पहला मोबाईल फोन ईश्वर ने बनाया। उसका नाम रखा 'प्रार्थना'।

इसका प्रयोग आप कहीं से भी करें, इसका सिग्नल कभी खोता नहीं तथा इसे कभी रीचार्ज भी नहीं करना पड़ता।

बोध कथा

क्रोध पर प्रेम की विजय

–म. आनन्द स्वामी

विश्वामित्र वास्तव में बहुत क्रोधी थे। क्रोध में उन्होंने सोचा–'मैं इस वसिष्ठ को ही मार डालूँगा। फिर मुझे ब्रह्मर्षि की जगह राजर्षि कहने वाला कोई रहेगा नहीं।' ऐसा सोचकर, एक छुरा लेकर वह उस वृक्ष पर जा बैठे, जिसके नीचे बैठकर महर्षि वसिष्ठ अपने शिष्यों को पढ़ाते थे। शिष्य आए, वृक्ष के नीचे बैठ गए। वसिष्ठ आए, अपने आसन पर विराजमान हो गए। शाम हो गई। पूर्व के आकाश में पूर्णमासी का चाँद निकल आया। विश्वामित्र सोच रहे थे, अभी सब विद्यार्थी चले जायेंगे। अभी मैं नीचे उतरूँगा, एक ही वार में अपने शत्रु का अन्त कर दूँगा। तभी एक विद्यार्थी ने नए निकलते हुए चाँद की ओर देखकर कहा–"कितना मधुर चाँद है वह! कितनी सुन्दरता है उसके अन्दर!"

वसिष्ठ ने चाँद की ओर देखा; बोले–"यदि तुम ऋषि विश्वामित्र को देखो तो इस चाँद को भूल जाओ। यह चाँद सुन्दर अवश्य है, परन्तु ऋषि विश्वामित्र इससे भी अधिक सुन्दर हैं। यदि उनके अन्दर क्रोध का कलंक न हो, तो वे सूर्य की भाँति चमक उठें।"

विद्यार्थी ने कहा–"परन्तु महाराज! वे तो आपके शत्रु हैं। स्थान-स्थान पर आपकी निन्दा करते हैं।"

वसिष्ठ बोले–"मैं जानता हूँ, परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि वे मुझसे अधिक विद्वान् हैं। मुझसे अधिक तप उन्होंने किया है। मुझसे अधिक महान् हैं वे। मेरा माथा उनके चरणों में झुकता है।"

वृक्ष पर बैठे विश्वामित्र इस बात को सुनकर चौंक पड़े। वह बैठे थे इसलिए कि वसिष्ठ को मार डालें और वसिष्ठ थे कि उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे। एकदम वे नीचे कूद पड़े। छुरे को एक ओर फेंक दिया। वसिष्ठ के चरणों में गिरकर बोले–"मुझे क्षमा करो!"

वसिष्ठ प्यार से उन्हें उठाकर बोले–"उठो ब्रह्मर्षि!"

विश्वामित्र ने आश्चर्य से कहा–"ब्रह्मर्षि? आपने मुझे ब्रह्मर्षि कहा? परन्तु आप तो ये मानते नहीं हैं?"

वसिष्ठ बोले–"आज से तुम ब्रह्मर्षि हुए महापुरुष! तुम्हारे अन्दर जो चाण्डाल था, वह निकल गया।"

यह क्रोध बहुत बुरी बला है! सबा करोड़ नहीं, सवा अरब गायत्री का जाप कर लें, एक बार का क्रोध इसके सारे फल को नष्ट कर देता है।।

वेदप्रकाश

संस्थापक : **स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द**

वर्ष ६३ अंक १० वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, मई, २०१४

सम्पा० **अजयकुमार** पूर्व सम्पादक : स्व० **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

परिश्रम का कोई विकल्प नहीं होता

–डॉ. सूर्यदेव शास्त्री

"सहज पके सो मीठा होऽय..." एक दाक्षिणात्य विद्वान हुए-नाम है–"तिरुवल्लुवर" उन्होंने "तिरुक्कुरल" नामक ग्रन्थ लिखा, जिसे दक्षिण भारत के एक भाग में धर्मग्रन्थ का स्थान प्राप्त है। इन्होंने इस ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखा है–

गच्छन् पिपीलिका जाति योजनानां शतान्यपि।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति।।

अर्थात् चलती हुई चींटीं सैंकडों किलोमीटर की यात्रा कर लेती है और सर्वाधिक लम्बी यात्रा करने में समर्थ गरुड नामक पक्षी बिना चले एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता।।

एक बार की बात है मैंने इस श्लोक को कक्षा में पढ़ाया बच्चों ने ध्यान से सुना-कथा पूर्ण हुई। दूसरे दिन जैसे ही कक्षा में प्रवेश किया तो एक विद्यार्थी ने खड़े होकर पूछा...सर! मेरी एक समस्या है? मुझे एक बात समझ में नहीं आ रही है? आपने पिछले दिन जो पाठ पढ़ाया था मैं उस पाठ को घर में दोहरा रही थी कि मेरी माँ ने मुझे समझाया कि इस बात को इस तरह से समझो।

एक बार एक खरगोश और एक कछुए में दौड़ हुई। खरगोश स्वभाव से तेज दौड़ने वाला है और कछुआ धीमे चलने वाला जलचर है, निर्धारित समय पर दौड़ शुरू हुई कुछ दूर तक खरगोश तेजी से दौड़ा और पीछे मुड़कर देखने लगा कि कछुआ तो बड़ी धीमी गति से आ रहा है वह मेरे साथ इस प्रतियोगिता में कैसे जीतेगा? कहाँ मैं तेज दौड़ने वाला और कहाँ यह कछुआ धीमे चलने वाला। खरगोश ने सोचा-चलो, मैं कुछ देर तक आराम कर लेता हूँ! खरगोश ने आराम किया तो नींद आ गई कुछ समय बाद आँख खुली तब भी कछुआ पीछे था मन हुआ कि चलो एक नींद

और ले लेता हूँ, खरगोश फिर सो गया। कछुआ धीरे-धीरे चलता रहा, परिणाम यह हुआ कि कछुआ निरन्तर चलते रहने से आगे निकल गया और दौड़ जीत गया।

विद्यार्थी ने पूछा—सर! मुझे आप यह बतलाइये कि क्या खरगोश और कछुए में यह दौड़ हुई थी? और अगर हुई थी तो कब और कहाँ हुई थी? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है क्योंकि खरगोश जंगल में रहता है और कछुआ पानी में-यह कैसे हुआ मुझे यह बतलाइये?

मैंने उत्तर दिया-बेटा! यह तो केवल कहानी है—यह दौड़ कभी नहीं हुई यह तो केवल हमें समझाने के लिए कही जाती है। इसका अर्थ केवल इतना है कि विद्यार्थी यदि पढ़ने में कमजोर ही क्यों न हो तब भी उसे यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि उसे सफलताएँ प्राप्त नहीं हो सकतीं। यदि विद्यार्थी पढ़ने में कुशल है तो भी उसे इस गलतफहमी में कभी नहीं रहना चाहिए कि बिना मेहनत ही उसे सब कुछ मिलने वाला है। भाव यह है कि बिना परिश्रम के किसी को कुछ नहीं मिलता। बल्कि परिश्रम न करने वाला अपना पाया हुआ भी खो बैठता है, जब कि परिश्रम करने वाला व्यक्ति नित्य प्रति उन्नति की राह पर आगे बढ़ता रहता है।

यह कहानी विशेषकर विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर सुनाई जाती है—क्योंकि विद्यार्थियों को यदि तीन श्रेणियों में विभक्त कर दिया जाए तो-पहली पंक्ति से खड़े होने वाले विद्यार्थियों की संख्या 16 प्रतिशत होती है ये कक्षा में अग्रणी रहते हैं। इसी प्रकार अन्तिम पंक्ति में खड़े होने वाले विद्यार्थियों की संख्या 17 प्रतिशत होती है, और मध्य की पंक्ति में खड़े होने वाले विद्यार्थियों की संख्या 67 प्रतिशत होती है—यह आँकड़ा एक सर्वे के आधार पर नियत किया गया है। कक्षा में 67 प्रतिशत विद्यार्थी मध्यम होते हैं। किसी प्रकार की रुकावट पैदा नहीं करते, न ज्यादा प्रश्न करते, न तर्क और न वितर्क, वे तो जो पढ़ाया जाता है उसमें सन्तुष्ट रहने वाले हैं, किन्तु पहली पंक्ति में बैठने वाले 16 प्रतिशत विद्यार्थी कुशल होते हैं, समझदार होते हैं, वे हमेशा आगे बने रहने की होड़ में रहते हैं इनका विद्यार्थी जीवन प्राय: प्रतिस्पर्धा में रहता है, वे किसी भी प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए उत्सुक रहते हैं। तीसरे स्थान पर रहने वाले विद्यार्थी 17 प्रतिशत हैं। इन्हें हम कमजोर विद्यार्थी समझते हैं ये विद्यार्थी स्वयं तो कुछ भी नहीं पूछते क्योंकि इनकी समझ में पहली बार पढ़ाने से नहीं आता और एक से अधिक बार पढ़ाने में आध्यापक आनाकानी करते हैं, परिणाम स्वरूप ये विद्यार्थी प्राय: कमजोर बने

रहते हैं।

अध्यापन के दौरान मैंने कई बार ऐसे परीक्षण किये हैं कि कमजोर बच्चों को उत्साहित करके, पढ़ने की प्रेरणा करके यदि उन्हें समझाया जाए तो वे भी आगे निकल आते हैं। हिन्दी भाषा की एक कहावत है—"डूबते को तिनके का सहारा" इसी प्रकार अनुत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थी को यदि थोड़ी सी सहायता मिल जाए तो वे भी सफलता का स्वाद चखने लगते हैं और बाद में कक्षा में प्रथम स्थान भी पाने में समर्थ हो जाते हैं। असफल होने वाले विद्यार्थियों के मन में हमेशा यह बात घर किये रहती है कि हम तो कमजोर है, जन्मजात कमजोर हैं, कभी आगे नहीं निकल सकते, मगर ऐसा नहीं हैं। माता-पिता और अध्यापक की थोड़ी सी कोशिश उनकी दिशा बदल देती है-बच्चों के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन होता देखा जाता है, अध्यापक बच्चों को पढ़ाने के साथ उनमें नई ऊर्जा का संचार भी करता है, जिससे वे भी पढ़ने के प्रति आशावादी एवं परिणामवादी हो जाते हैं।

महापुरुषों के जीवन परक कथानकों, प्रसंगों एवं जीवनियों से व्यक्ति उत्साहित होते हैं, नवस्फूर्ति का संचार होता है, कुछ नया करने का मन में भाव उत्पन्न होता है—ऐसे में व्यक्ति उचित अवसर की तलाश भी करता है और बहुश: देखा जाता है व्यक्ति की सफलता के पीछे उसकी जागरुकता कार्य करती है, ठीक समय आते ही उस कार्य में प्रवृत्त हो जाना, अपनी दिशा को समझ लेना, ऐसा नहीं है कि व्यक्ति के जीवन में अवसर नहीं आते-बल्कि यदि इसे यूँ समझ लें कि हर व्यक्ति के जीवन में अवसर आते हैं और अनेक बार आते हैं, बस आवश्यकता है उन्हें पहचानने की। जो व्यक्ति अवसर मिलने पर उसे नहीं पहचानते वे लोग प्राय: निराशा भरा जीवन ही बिताने को मजबूर रहते हैं, ऐसे में नकारात्मक ऊर्जा का सृजन होने लगता है, सारी ताकत नकारात्मक सोच में व्यय हो जाती है—जीवन में अकर्मण्यता बनी रहती है—ऐसे में उन्नति का शिखर कैसे प्राप्त हो? एक ऐसा उदाहरण पढ़ने को मिलता है—जिसे हम कह सकते हैं कि निरन्तर प्रयत्न से व्यक्ति बहुत आगे बढ़ जाता है।

"ज़िलेट" आज एक ऐसा नाम है जिसे विश्वभर में जाना पहचाना सा अनुभव किया जा सकता है। प्रतिदिन काम में आने वाले 'ब्लेड' का निर्माण 'ज़िलेट' नाम के व्यक्ति ने किया था। 'ज़िलेट' की शिक्षा बहुत कम थी, यूँ समझ लीजिए कि जीवन के अधिकाँश काल में ज़िलेट ने मजदूरी का कार्य किया। लेकिन 'ज़िलेट' के मन में हमेशा अपना काम कुशलता से करने का रहता था, वह हमेशा सोचता रहता था कि मैं जो भी कार्य

करूँ उसमें किसी प्रकार की कमी न रहने दूँ और मैं कौन सा काम करूँ जिससे मुझे असफल न होना पड़े। पैसे भी नहीं थे, इसलिए एक ऐसे साथी की तलाश भी थी जो कि पैसे की व्यवस्था कर सके।

एक-एक करके दिन बीतते जा रहे थे, आयु बढ़ती जा रही थी, एक दिन ज़िलेट चुपचाप बैठा हुआ था कि एक मित्र उससे मिलने के लिए आ गया, मित्र ने देखा कि ज़िलेट चुपचाप आँख बंद करके बैठा है और चिन्तित दिखाई दे रहा है, मित्र ने चिन्ता का कारण पूछा-तो ज़िलेट ने बताया कि मैं एक नया काम करना चाहता हूँ लेकिन मैं वह काम करना चाहता हूँ जिसकी खपत अधिक हो और खर्च कम हो, प्रतिदिन प्रयोग में आने वाली वस्तु हो। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या करूँ, मित्र कुछ देर तक बैठा रहा, बातें हुईं-और चला गया। ज़िलेट पूरे दिन यही सोचता रहा कि क्या करूँ? दूसरे दिन सुबह 'ज़िलेट' शेविंग करने के लिए खड़ा था उसने देखा कि उसका उस्तरा ठूँठा है, ज़िलेट ने उसे पत्थर पर घिसा और फिर शेव करने लगा। ज़िलेट बार-बार अपने उस्तरे को पत्थर पर घिसकर तेज कर रहा था मगर उस्तरा काफी पुराना था इसलिए वैसी धार नहीं बन पा रही थी जैसी कि नये की होती है। बस, उसी दिन शेविंग करते हुए ज़िलेट के मन में यह विचार आया कि मुझे शेविंग करने के लिए ब्लेड बनाना चाहिए। यह बेहद उपयोगी सिद्ध होगा, कई दिनों तक ज़िलेट के मन में हजारों बार यही विचार होता रहा कि प्रतिदिन के प्रयोग में आने वाला ब्लेड लोगों के लिए बेहद उपयोगी सिद्ध होगा। धन का अभाव था, किसी भी प्रकार साधन जुटाने ही हिम्मत नहीं थी, इसका निर्माण किस प्रकार किया जाए, इसकी तैयारी किस प्रकार की जाए? कुछ दिनों के बाद ज़िलेट अपने मित्र के पास गया-मित्र ने ज़िलेट को देख तो खुश हुआ आज ज़िलेट उदास नहीं था बल्कि खुश था, उत्साहित था और वह अपने मित्र को जल्दी से अपनी 'ब्लेड' बनाने की योजना बताने के लिए उतावला दिखाई दे रहा था। ज़िलेट ने जल्दी से अपनी बात मित्र से कह दी। मित्र को ज़िलेट की बात बहुत पसन्द आई और आर्थिक सहयोग देने की बात भी स्वीकार कर ली। ज़िलेट ने ब्लेड बनाने के काम में दिन रात परिश्रम किया, लगभग एक वर्ष तक ज़िलेट ने भरपूर प्रयत्न किया मशीन खरीदी, जगह तलाशी एवं एक साथी भी। दिन रात प्रयत्न किया और परिणाम स्वरूप ब्लेड बनकर तैयार हो गया। परीक्षण भी सफल हुआ। अब बाज़ार

में बेचने का समय आया। ज़िलेट स्वयं अपने साथी को लेकर दुकानों पर गया और लोगों को समझाया लेकिन यह कहानी किसी की समझ नहीं आई, ज़िलेट तीन दिन तक एक भी ब्लेड नहीं बेच पाया। चौथे दिन एक व्यक्ति को खूब समझाया, उसे डेमो भी दिया, उसने मन-मारकर एक ब्लेड खरीदा। ज़िलेट बिना थके हर रोज अपने साथी के साथ ब्लेड बेचने निकलता, मगर शाम को प्रायः उदास लौटा करता। ज़िलेट ने हिम्मत नहीं हारी। लगभग तीन मास बाद ज़िलेट अपने पुराने ग्राहक के पास गया तो इस बार उसे कुछ भी समझाना नहीं पड़ा और उसने अपने मित्र को भी ब्लेड खरीदने को कहा। इस प्रकार एक वर्ष में केवल 51 ब्लेड ही बिके। क्योंकि लोगों को यकीन ही नहीं हो रहा था कि इस तरह ब्लेड से शेविंग की जा सकती है उस समय की पब्लिक तो शेविंग करने का साधन उस्तरे को ही उत्तम समझती थी इसी कारण ब्लेड बेचने की प्रक्रिया, ब्लेड बनाने से भी अधिक कठिन सिद्ध हुई। लोगों ने इस ब्लेड की और देखना भी पसन्द नहीं किया। लोगों के मुँह से बस एक ही बात निकलती थी कि इतनी तेज धार वाले ब्लेड से मुँह कट जाने का भय है, ज़िलेट लोगों को डेमो देने के लिए भीड़ वाली जगह पर शेविंग करके दिखाया करता, मगर भीड़ को समझाना टेढ़ी खीर ही साबित हुई; बड़ी मुश्किल से कोई एक आदमी तैयार होता; कभी दो आदमी तैयार हो जाते।

ज़िलेट ने हिम्मत नहीं हारी और उसने अपनी पूरी ताकत ब्लेड बेचने में लगा दी। परिणाम स्वरूप एक वर्ष में ज़िलेट ने इतने ब्लेड बेचे कि फायदा तो दूर की बात है खर्चा भी नहीं निकला।

प्रतिदिन के प्रयोग में आने वाली वस्तु थी, पहले से प्रयुक्त लोगों ने इसकी माँग शुरू कर दी और इसके बाद बड़ी तेजी से ब्लेड का कारोबार शुरू हुआ—हिन्दी भाषा में कहावत है—"माली सींचे सौ घड़ा तब ऋतु पे फल होय" अर्थात् माली सैंकड़ों घड़े पानी की सिंचाई करने के बाद ही समय आने पर फलों का हकदार होता है वैसी ही परीक्षा ज़िलेट की भी हुई—मगर ज़िलेट की हिम्मत ने उसे आज इस मंजिल पर पहुँचा दिया है कि दुनिया भर में घर-घर में प्रयोग किया जाने वाला ब्लेड बेहद उपयोगी वस्तु है। आज ब्लेड की दुनिया का कारोबार लगभग 12 करोड़ से अधिक का है।

इससे यह बात तो सिद्ध है कि परिश्रम का कोई विकल्प नहीं है, हम समाज

में देखते हैं कि लोग थक हारकर बैठ जाते हैं, हिम्मत हार कर बैठ जाते हैं मैं उनसे कहना चाहूँगा कि उन्हें हिम्मत हार कर बैठने से कुछ भी मिलने वाला नहीं है बल्कि नई सुबह के साथ नई शुरुआत करने का मन तैयार करना चाहिए। हर सुबह हमारे लिए एक नया सन्देश लेकर आती है–हमें कुछ करने के लिए प्रेरित करती है बस, हमें आवश्यकता है उसे पहचानने की, न कि थक हारकर बैठने की। समाज में महान् पुरुषों के जीवन से शिक्षा लें जिन्हें हम आज महापुरुष मानते हैं उनके जीवन को देखें–यूँ लगता है कि **"जीवन में कष्टों को देखकर न घबराने वाले पुरुष ही महापुरुषों की श्रेणी में आते हैं"** शायद इसीलिए इनका जीवन आदर्श जीवन कहा जाता है–हमें भी अपने आदर्शों को स्थापित करना चाहिए एवं नई चेतना पाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। महापुरुषों के जीवन को देख नई ऊर्जा का सृजन अनुभव कर जीवन को सफल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। *–डॉ. सूर्यदेव शास्त्री कृत 'नए आकाश की तलाश' से उद्धृत*

धर्म के असली रूप को समझें

–डॉ. पूर्ण सिंह डबास

धर्म शब्द का मूल अर्थ और उसके वास्तविक स्वरूप को न समझने के कारण संसार भर में, धर्म के विषय में अनेक अवैज्ञानिक और भ्रांत धारणाएँ प्रचलित हैं जो और भी आगे बढ़ते हुए, तरह-तरह के अंधविश्वासों और पाखंडों का रूप ग्रहण कर लेती है। धर्म ही क्यों, यही दुर्गति **श्रद्धा, आस्था, विश्वास, पूजा** तथा **भक्ति** जैसे शब्दों की भी हो रही है जो धार्मिक क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। दरअसल इन शब्दों का अर्थ न तो हमने जानने-समझने की कोशिश की और न ही हमें किसी ने बताया-समझाया। ऐसी स्थिति में इन शब्दों का अर्थ हमारे पास किसी गंभीर सोच-विचार तथा वैज्ञानिक चिंतन के परिणाम स्वरूप नहीं पहुँचा, बल्कि उस वातावरण से पहुँचा जहाँ पर यह, तरह-तरह के पाखंडों से ग्रस्त नेताओं द्वारा, अधकचरे धर्म गुरुओं द्वारा तथा परम्परागत रूढ़ियों और अंधविश्वासों में जकड़े माताओं-पिताओं द्वारा फेंक दिया गया था।

कहाँ से आया हमारे पास तथाकथित धर्म?

हम किसी तथाकथित धर्म या पूजा-पद्धति से कैसे जुड़े, इसकी पृष्ठ भूमि पर नजर डालना भी बड़ा रोचक होगा। दरअसल कोई माता-पिता चार-पाँच साल

के (या इससे भी छोटे) बच्चे को अपनी उंगली थमा कर किसी मंदिर में ले गया और एक पत्थर की प्रतिमा की ओर संकेत करते हुए बच्चे को बताया कि यह **भगवान** है, इसे नमन करो, इसको यह चढ़ावा या यह रुपया अर्पित करो। बच्चे ने माता-पिता की बात को मानते हुए यह सब-कुछ कर दिया। माता-पिता ने उसे ऊपर उठाकर मंदिर में लगी घंटी बजवाई।

बच्चे को बड़ा अच्छा लगा। इन सब कार्यों को करते हुए उसने कर्त्ता होने की खुशी का अनुभव किया। इसके बाद उसे खाने का प्रसाद मिला जिसे खाकर उसकी खुशी और भी बढ़ गई। बच्चे को बताया गया कि यही भगवान की पूजा है। इसी प्रकार एक पिता (जहाँ पर माँ साथ नहीं जा सकती थी) अपने बेटे को उजले कपड़े और टोपी पहनाकर जुम्मे या शुक्रवार के दिन मस्जिद में ले गया, जहाँ पर सबके साथ एक तरह की कवायद के रूप में; बच्चे से भी नमाज अदा करवाई गई अर्थात् किसी परम शक्ति को नमस्कार करवाया गया। बच्चे ने समझ लिया यही धर्म होता है। एक अन्य माता-पिता अपने बच्चे को गुरुद्वारे में ले गए जहाँ सब लोग एक ग्रंथ को नमन कर रहे थे। बच्चे ने भी उसी तरह किया। मधुर संगीत था, सफाई और शांति थी। बच्चे को खाने को प्रसाद भी मिला। उसे बड़ा अच्छा लगा। उपस्थित लोग बार-बार कुछ जयनाद कर रहे थे। बच्चे ने भी उत्साह से वैसा ही किया और इस प्रकार बच्चे की धार्मिक बनने की प्रक्रिया शुरू हो गई। इसी क्रम में एक माता-पिता अपने बच्चे को रविवार के दिन चर्च में ले गए। बच्चे ने देखा कि वहाँ सजधज कर आए और भी बहुत से व्यक्ति मौजूद हैं। चर्च में उनके एक पूज्य पुरुष की प्रतिकृति या चित्र लगा था जिसके विषय में बच्चे को बताया गया कि यह ईश्वर का पुत्र है और इसकी शरण में जाने से सब दुख-दर्द दूर हो जाते हैं। इतना ही नहीं यदि तुम इसके सामने अपने पाप या अपराध स्वीकार कर लो तो यह तुम्हें क्षमा कर देगा। ये बातें धीरे-धीरे बच्चे की मान्यताएँ बन गई और वह एक-दूसरे प्रकार के धर्म का अनुयायी बन गया। इसी तरह संसार भर के प्रायः सभी माता-पिता अपने-अपने बच्चों को वहाँ-वहाँ ले गए, और ले जाते रहे, जहाँ-जहाँ उनके माता-पिता उन्हें ले गए थे। परिणाम स्वरूप लंबे समय से चली आ रही ये परम्पराएँ और रूढ़ियाँ अविवेकी रूप से बच्चे को पकड़ा दी गई जो उसकी मान्यताएँ, धारणाएँ, और आस्थाएँ बन गई और अंततः उसका धर्म भी। इस प्रकार माता-पिताओं द्वारा, चार-पाँच वर्ष की अबोध आयु के बच्चों पर एक तथाकथित धर्म लाद दिया गया जिसे वे आज तक ढोते चले आ रहे हैं। लगातार इन्हीं बातों को सुनने-करने से, उन्हीं के नारे लगाने

से, वे बातें उनके मन में इतनी गहराई और व्यापकता से रच-पच गई कि तर्क के लिए कोई स्थान नहीं बचा। अब यदि कोई उन्हें बताता है कि तुम्हारी अमुक मान्यता अवैज्ञानिक है या तर्क युक्त नहीं है, इन्हें बदल दो, तो या तो वे ऐसी सलाह की उपेक्षा कर देते हैं या लड़ने-भिड़ने पर उतारुरू हो जाते हैं। इतना ही नहीं बल्कि वे एक-दूसरे से अपनी मान्यताएँ मनवाने के लिए लड़ते-झगड़ते भी रहते हैं।

तर्कहीन आस्थाओं, क्रियाओं या विश्वासों का नाम धर्म नहीं है:

श्रद्धा, आस्था, विश्वास, पूजा तथा **भक्ति** आदि के विषय में भी हमने प्राय: ऐसा ही तर्कहीनता का दृष्टिकोण अपना रखा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि धर्म में ऐसी अवैज्ञानिक बातें शामिल हो गई हैं जो मूर्खता की सीमाओं तक जा पहुँची हैं। जब हम कहते हैं कि हमारी अमुक में श्रद्धा या आस्था आदि है तो हम नहीं जानते कि इन शब्दों का वास्तविक अर्थ क्या है। भाषा की थोड़ी गहरी जानकारी इस विषय में हमारी सहायता कर सकती है। आइए, इन शब्दों के मूल अर्थ पर विचार करते हैं:

1. श्रद्धा :

शब्दों का निर्वचन करने वालों का कहना है कि **श्रत्** तथा **धा के** योग से बनने वाले **श्रद्धा** शब्द में **श्रत्** का अर्थ **हृद** या **हृदय** है (जो यौगिक शब्दों में **हृत्** तथा **हृच्च,** आदि रूपों में भी मिलता है) तथा **धा** का अर्थ है धारण करना।

इस प्रकार जब हम कहते हैं कि मेरी अमुक के प्रति श्रद्धा है तो इसका मूल भाव है कि मैं उसे अपने हृदय में धारण करता हूँ। लेकिन, धारण करने से पहले यह विचार नहीं किया जाता कि वह धारण करने के योग्य है या नहीं! बस, यही से गड़बड़ शुरू हो जाती है और हम श्रद्धा के नाम पर हर ऐरी-गैरी वस्तु को अपने हृदय में स्थान देना शुरू कर देते हैं और जीवन अवैज्ञानिक मान्यताओं या धारणाओं का शिकार बन जाता है। श्रद्धा के आधार पर बना **श्राद्ध** शब्द इसका ज्वलन्त उदाहरण है। जैसा कि स्पष्ट है इस का मूल अर्थ है–'श्रद्धापूर्वक किया गया कोई कार्य' लेकिन आप जानते हैं कि हमने इस शब्द को कैसे-कैसे पाखंडपूर्ण कर्म-कांडों और अंधविश्वासों में घसीट दिया है।

2. आस्था :

आस्था शब्द पर विचार करने पर हम देखते हैं कि इसके मूल में, भारोपीय भाषा परिवार के हजारों शब्दों को जन्म देने वाली वही **स्था** (=टिकना, स्थित होना, आश्रित होना) धातु है जिससे, आस्था के साथ-साथ, संस्कृत के **अवस्था, अवस्थान, स्थान, स्थिति, आस्थान, अवस्थापन, स्थापना, स्थावर, स्थाणु,**

स्थायी तथा **स्थिर** आदि अनेक शब्द बनते हैं। इस प्रकार आस्था का मूल अर्थ हुआ: किसी पर या **किसी के साथ 'स्थित होना, टिकना या ठहरना' अथवा किसी का 'आश्रय या सहारा लेना।'** इस स्थिति में भी हमने यह नहीं सोचा कि किस पर टिका जाए या स्थित हुआ जाए या किस का आश्रय या सहारा लिया जाए। हमने यह सोचा ही नहीं कि हम अपने मन को जहाँ पर टिका रहे हैं, वह विचार, धारण या व्यक्ति; मन को टिकाने के योग्य है भी या नहीं। दरअसल हमने बिना सोचे-समझे उनका सहारा ले लिया जिनको खुद सहारे की जरूरत थी।

3. विश्वास :

इसी क्रम में जब हम कहते हैं कि मैं अमुक में विश्वास करता हूँ या रखता हूँ तो उस समय इस शब्द का अर्थ भी हमारे लिए स्पष्ट नहीं होता। दरअसल विश्वास शब्द संस्कृत की **श्वस्** (=साँस लेना) धातु पर आधारित है। इस धातु में **वि** उपसर्ग लगने से एक और क्रिया-रूप **विश्वस्** बनता है जिसका अर्थ है 'मुक्त रूप से या मुक्त भाव से या स्वच्छन्दता पूर्वक साँस लेना।' स्वाभाविक है मुक्त भाव से या आजादी से साँस तभी लिया जा सकता है जब व्यक्ति भय, आशंका तथा द्विधा आदि से ग्रस्त न हो। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि **विश्वस्** से बने विश्वास' में भरोसा, यकीन, सहारा तथा विश्राम आदि के अर्थ विकसित हो गये। अर्थ विकास की यही प्रक्रिया **विश्वस्** से बने **विश्वसनीय** (भरोसे का) जिसका सहारा लिया जा सके) तथा विश्वस्त (=भरोसे से भरा, निर्भीक, आशंका या भयरहित, असंदेही) में भी दिखाई देती है। जिस प्रकार **श्वस्** में **वि** उपसर्ग जुड़कर **विश्वस्** और फिर इससे **विश्वास** शब्द बनता है उसी प्रकार इस में **आ** उपसर्ग जुड़ने से **आश्वस्** (=साँस लेना, मुक्त भाव से साँस लेना, दोबारा साँस लेना, साहस करना, जी उठना, पुनर्ज्जीवित होना या करना) और फिर इससे **आश्वास, आश्वासक, आश्वासन** तथा **आश्वासित** आदि शब्द बनते हैं जिनके अर्थ **वि-श्वास्** से बनने वाले **वि-श्वसनीय** तथा **विश्वस्त** आदि के समान ही हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि **विश्वास** का अर्थ किसी के प्रति भरोसा या यकीन होना अथवा उसका सहारा या आश्रय प्राप्त होना है। दूसरे शब्दों में विश्वास वह स्थिति है जिसमें किसी का आधार, आश्रय सा सहारा प्राप्त करके व्यक्ति'आश्वस्त' हो उठता है, भयमुक्त हो जाता है या मानो फिर से जी उठता है। स्वाभाविक है कि ऐसे आधार, सहारे या आश्रय का निर्णय तर्कपूर्ण चिंतन पर आधारित होना चाहिए।

4. पूजा तथा भक्ति :

धर्म के क्षेत्र में **पूजा** तथा **भक्ति** शब्द इतने अधिक प्रचलित है कि

अधिकांश व्यक्ति इन्हें प्राय: धर्म के समानार्थक के रूप में ग्रहण करते हैं। क्रमश: जिन **पूज्** तथा भज **धातुओं** पर ये शब्द आधारित हैं उन दोनों का ही अर्थ 'सेवा करना' है। अब प्रश्न यह उठता है कि जिस परम शक्ति, परमात्मा या ईश्वर की सेवा करके आप धार्मिक बनना चाहते हैं उनकी सेवा कैसे की जाए? स्वाभाविक है कि सेवा उसकी की जा सकती है जिसका कोई रूपाकार हो, जो आपकी पहुँच के भीतर हो और जिसकी कोई जरूरत हो।

आइए, पूजा कैसे की जा सकती है जरा इस पर कुछ विस्तार से बात करें। संसार भर के धर्म, अनेक मतभेदों के बावजूद, इस बात पर सहमत हैं कि इस ब्रह्माण्ड की रचयिता परम शक्ति, ईश्वर या परमात्मा का स्वरूप निराकार है और वह सब जगह मौजूद है। वही इस सृष्टि का स्वामी है, पोषक है और सब कुछ का देने वाला है। जब सब कुछ का वही स्वामी है तो भला उस की क्या कोई जरूरत हो सकती है? आज तक कोई भी यह पता नहीं लगा सका कि ईश्वर की क्या जरूरत है। पानी, वायु, भोजन, प्रकाश आदि सभी कुछ तो उसका है। ऐसी हालत में भला वह आदमी से क्या चाहेगा! और जब सब कुछ उसी का है तो हम उसे दे भी क्या सकते हैं! इस प्रकार जब न तो उसकी कोई जरूरत है और न कुछ हमारा अपना है तो फिर कुछ देकर तो उसकी सेवा या पूजा नहीं की जा सकती। कुछ ले-देकर आदमी की सेवा या पूजा तो की जा सकती है पर आवश्यकता रहित, सर्वशक्तिमान् अपने आप में पूर्ण और इस पूरी सृष्टि के स्वामी की नहीं की जा सकती।

जब ईश्वर को कुछ देकर उसकी पूजा नहीं की जा सकती तो फिर कैसे की जा सकती है, इसका उत्तर बड़ा स्पष्ट है। अपूर्ण या अभावग्रस्त की सेवा उसे कुछ देकर और कुछ लेकर की जा सकती है और जो पूर्ण है उसकी सेवा केवल उससे कुछ लेकर की जाती है। वह संपूर्ण है। उससे कुछ लेने में उसकी पूर्णता कम नहीं होती। ईश्वर के अस्तित्व की सार्थकता देने में ही है। परिणामत: ईश्वर के गुणों को पहचानकर उन्हें अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार धारण करना ही उसकी सेवा या पूजा है। उदाहरण के लिए ईश्वर न्यायकारी है, वह किसी के साथ पक्षपात नहीं करता तो हम भी न्याय करें, अन्याय के समाने नहीं झुकें, यह उसकी पूजा है। वह सर्वव्यापक है, हम भी संकीर्णता से ऊपर उठकर अपना दृष्टिकोण व्यापक बनाएँ, यह उसकी पूजा है। वह जीवन-यापन के साधन हमें देता है, हम भी जिनके पास कम साधन हैं उनकी सहायता करें, यह ईश्वर की पूजा है। वह सर्वशक्तिमान है, हम भी शक्तिवान और बलवान बनें यह उसकी पूजा है। वह सर्वज्ञ है अर्थात् सब कुछ जानता है अत: हम भी अपनी मेधा-बुद्धि बढ़ाएँ, यह उसकी पूजा है। सार रूप में ईश्वर के स्वरूप को पहचानकर उसके

गुणों को धारण करने की प्रक्रिया ही उसकी पूजा है।

इस प्रकार की पूजा कठिन कार्य है। न्याय, सत्य, निर्भीकता आदि के मार्ग पर चलना बहुत दुष्कर है। परिणामत: हमने सरल मार्ग अपना लिया। हमने ईश्वर को महापुरुषों का रूप देकर उसकी आकृतियाँ बना ली और जैसे किसी आदमी को खिला-पिला कर उसकी सेवा की जाती है, उनकी सेवा करने लगे और उस सेवा के बदले में उनसे तरह-तरह की याचनाएँ करने लग गए। इस प्रसंग में एक रोचक उदाहरण देना चाहूँगा। मैं एक दिन साईं बाबा के एक मंजिर के पास से गुजर रहा था। वीरवार का दिन था। इस दिन साईं बाबा के भक्त वहाँ भंडारा करते हैं अर्थात् लोगों को भोजन कराते हैं। ऐसे अवसर पर मंदिर के बाहर भिखारियों का जुट जाना स्वाभाविक है। उस दिन भी बहुत से भिखारी आए हुए थे और भोजन के लिए झपट रहे थे। मंदिर का एक पुजारी हाथ में डंडा लिए भिखारियों को धकियाते हुए और कभी-कभी डंडे से हलके आघात करते हुए उनकी लाइन बनवा रहा था। जब उसने एक भिखारी को डंडा मारा तो मैंने थोड़े आक्रोश में कहा—इन्हें क्यों मार रहे हो? पुजारी मुझे जानता था। बोला-'अरे डॉक्टर साहब आप नहीं जानते ये भिखारी बड़े दुष्ट हैं। छीना-झपटी में भक्तों की गाड़ियों के शीशे तक तोड़ देते हैं। मैंने कहा—मंदिर के भीतर जो लोग घुसे हैं क्या वे भिखारी नहीं है। ये तो चार पूरी और सब्जी पाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं जबकि भीतर वाले लाखों-करोड़ों मांग रहे हैं। उनको भी मंगाओ। वे सीनियर भिखारी हैं। लेकिन आप उन्हें नहीं भगाओगे क्योंकि वे याचना के बदले साईं बाबा की प्रतिमा के पास सैकड़ों-हजारों रुपये रख रहे हैं जिन से आप और आपके महाराज माला-माल हो रहे हैं। वह कुछ नहीं बोला और खिसियाना सा होकर भीतर चला गया। सार रूप में कहा जा सकता है कि वास्तविक पूजा और भक्ति हमसे दूर हो गई है और उसका स्थान इच्छापूर्ति की याचनाओं ने ले लिया है। मूर्तियाँ बनाकर हमने उस निराकार को साकार कर डाला, सर्वदेशीय को एक देशीय कर डाला, असीमित को सीमित कर डाला, और चेतन को जड़ कर डाला। जब हमने अपने अज्ञान के कारण ईश्वर का स्वरूप ही विकृंत कर दिया तो हमारी पूजा का विकृत होना भी स्वाभाविक था। धर्म एक व्यवसाय बन गया, धर्म-धंधियों की दुकानें खुल गई। जड़ पूजा का प्रसार हुआ जिसने समाज तथा राष्ट्र को भी निष्क्रिय और जड़ बना दिया।

धर्म का वर्तमान परिदृश्य :

हमें आजकल, चारों ओर धर्म का जो परिदृश्य दिखाई देता है वह अधिकाशंत: धर्म के, तर्क एवं विज्ञान युक्त, वास्तविक स्वरूप से बहुत दूर है।

हमने मानवीय परिष्कार के गुणों को धारणकरने की कठोर साधना (अभ्यास) को छोड़कर, जो कि बहुत कठिन काम है, आसान रास्ते अपना लिए हैं। हमने महापुरुषों और कभी-कभी तो तथाकथित महापुरुषों एवं काल्पनिक देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ बनाकर रख ली है और उनकी सेवा शुरू कर दी है। यह सरल काम है। एक दिन मैंने देखा कि एक सज्जन सुबह-सुबह कार चलाते हुए जा रहे थे। कार चलाते हुए वे सिग्रेट भी पी रहे थे। जब वे एक मंदिर के द्वार के सामने पहुँचे तो उन्होंने बीच सड़क पर कार को रोका, उंगलियों के बीच में सिग्रेट पकड़े-पकड़े हाथ जोड़कर 'भगवान' को प्रणाम किया और आगे बढ़ गए। भक्ति का इससे आसान तरीका भला क्या हो सकता है! इसी प्रकार किराए के गायक बुलाकर साल में एक-दो बार जगराता या भगवती जागरण करवा लेना भी सरल काम है। यानि गायकों को पैसे दिए, देवी की बिजली से चकाचौंध मूर्त्तियाँ रखवाई, कान फोड़ आवाज में संगीत हुआ, खुद आने-जाने वालों की आव-भगत में लगे रहे और धर्म-कार्य सम्पन्न हो गया। ऐसी धर्म-साधनाएँ बहुत आसान हैं। अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो धर्म के अनुरूप कोई सत्कार्य नहीं करते लेकिन रास्ता चलते समय राह में पड़ने वाले प्रत्येक मंदिर को तथा सड़क के फुटपाथ पर कब्जा करने की नीयत से किसी के द्वारा रखी मूर्त्ति तक को प्रणाम जरूर करके जाते हैं। ऐसा करने में तन-मन पर कोई जोर नहीं पड़ता लेकिन इससे मन या शरीर का कोई परिष्कार होता है यह स्वीकार करने में मन पर अवश्य ही जोर पड़ता है। ये चेष्टाएँ डरे हुए व्यक्ति की चेष्टाएँ हैं। उनका तर्क होता है-हाथ जोड़ने में क्या घिसता है! क्यों 'भगवान' को नाराज किया! जैसे कि भगवान कोई आदमी है और वह भी उनका परिचित, जिसे हाथ जोड़ेंगे तो प्रसन्न हो जाएगा और नहीं जोड़ेंगे तो नाराज हो जाएगा। जो सज्जन इससे ज्यादा भक्ति-भाव रखते हैं, वे मंदिर के भीतर चले जाते हैं, प्रतिमा को नमन करते हैं, कुछ चढ़ावा चढ़ाते हैं और पुजारी से तिलक लगवाकर प्रसाद ग्रहण कर लेते हैं तथा इसे भक्ति की इतिश्री समझ लेते हैं।

इसी तरह कुछ लोग गंगा-यमुना आदि पवित्र मानी जाने वाली किसी नदी के पुल पर से गुजरते हुए रुपये-दो रुपये का कोई सिक्का नदी में फेंक कर हाथ जोड़ लेते हैं और इसे धार्मिक क्रिया मानते हैं। कोई सोचता है कि पैदल जाकर हरिद्वार से गंगा-जल लाना और उससे किसी देव-प्रतिमा को स्नान करा देना धार्मिक कृत्य है जिससे मनोकामनाएँ भी पूरी होती हैं। मनोकामना पूरी होने का लालच न होता तो शायद वे ऐसी कठिन पद यात्रा कभी नहीं करते। कुछ लोग

ऐसे ही लालच में मंदिरों के परिसर में खड़े किसी वृक्ष विशेष को धागा बाँधकर आते हैं और मनौती पूरी होने पर उसे खोलकर आने का वचन देते हैं। मैं देखता हूँ कि एक सज्जन रोज पार्क में जाते हैं, वहाँ खड़े एक पीपल के पेड़ के खोखल में किसी देवी-देवता की प्रतिमा या चित्र रखते हैं, उसे माला पहनाते हैं, पीपल के तने के चारों ओर एक धागा लपेटते हैं और कभी-कभी दीपक भी जलाते हैं। इसके बाद एक लोटा जल का अर्घ्य देते हैं और भूमि पर माथा टिकाकर नमन करते हैं। वे यह समझने की कोशिश नहीं करते कि पीपल या तुलसी आदि की पूजा का अर्थ उनके आगे हाथ जोड़ना नहीं है बल्कि इनकी रक्षा या पोषण करना है ताकि ये नष्ट न हों और हम इनके औषधीय गुणों का लाभ उठाते रहें। स्पष्ट है कि इन क्रियाओं से उनका पोषण नहीं होगा और एक लोटा जल चढ़ाने से तो पीपल जैसे विशाल वृक्ष की प्यास बुझेगी नहीं!

इसी तरह से धर्म के नाम पर और भी अनेक बातों का प्रचलन है। जैसे कि बलिवैश्वदेव यज्ञ की भावना को समझे बिना, बिलों को ढूँढ़-ढूंढ कर, सिर्फ चींटियों के लिए आटा डालना, अच्छे-भले, ब्रह्मचारी हनुमान का तिरस्कार करते हुए, बंदरों को उनका संगोत्री समझकर चने आदि खिलाना, पाप धोने की कामना से कभी-कभार नदियों में डुबकी लगा आना, तीर्थ और धाम कहे जाने वाले स्थानों की यात्रा कर लेना ताकि मोक्ष की प्राप्ति हो सके, निराहार रहने की आवश्यकता और उपयोगिता समझे बिना उपवास करना या भोजन न करना, व्रत या संकल्प का ठीक अर्थ जाने बिना उसे भी भूखे रहने और जल तक न पीने का पर्याय बना देना, **रामचरित् मानस** के सुंदरकाण्ड या किसी अन्य भाग का पाठ करा लेना ('लंका काण्ड' में राम का दिव्य स्वरूप कम उजागर नहीं हुआ है लेकिन इसका पाठ शायद ही कोई करवाता हो) तथा बिना अर्थ समझे और यहाँ तक कि ठीक उच्चारण करने में असमर्थ होने पर भी वेद मंत्रों का पाठ करवाते या करते हुए हवन करा लेना आदि ऐसी ही क्रियाओं के उदाहरण हैं जो धर्म के नाम पर की जाती है। इस समय व्यपारी बंधुओं की वह संक्षिप्त-सी भक्ति भी उल्लेखनीय है जो वे रोज दुकान खोलते समय करते हैं। धूप या अगरबत्ती जलाई, उसका धुआँ हथेली के झोंके से काउंटर पर या किसी कोने में लगे देवी-देवताओं के चित्रों पर फेंका और फिर उसे सारी दुकान में घुमा दिया। इतना ही नहीं धूप बत्ती का एक चक्कर धनपेटिका या कैश बॉक्स में भी लगवा दिया ताकि भगवान उसे जल्दी ही रुपयों से भर दें।

यहाँ यह भी ध्यान देने वाली बात है कि व्यक्ति और समाज के बहुत से

कार्य और दायित्व काल और स्थान सापेक्ष होते हैं और उनका अनुपालन करने के लिए उन्हें धर्म के साथ जोड़ दिया जाता है या धर्म का रूप दे दिया जाता है। उदाहरण के लिए भारत में इस्लामी आक्रमण के समय हिन्दुत्व के प्रतीकों, सिर की चोटी या शिखा तथा यज्ञोपवीत या जनेऊ को हिन्दू धर्म के सुदृढ़ अभिलक्षणों के रूप में प्रचारित किया गया। ये विदेशी लोग हिन्दुओं के विपरीत उनके अत्यंत उपयोगी पशु गाय का माँस भी खाते थे अत: गौ-रक्षा को भी हिन्दू धर्म के अभिलक्षयों में शामिल कर दिया गया। यज्ञोपवीत तो प्राय: ब्राह्मण ही (जिनमें अधिसंख्य तथाकथित ब्राह्मण ही थे और ब्रह्मज्ञान से उनका कुछ लेना-देना नहीं था) धारण करते थे इसलिए इन 'धर्म ध्वजियों' या धर्म नियामकों ने शिखा और यज्ञोपवीत के साथ स्वयं को भी प्रतिष्ठित कर लिया और शेष हिन्दू-समाज विशेषकर क्षत्रियों या योद्धा जातियों पर यह जिम्मेदारी डाल दी कि वे धर्म की रक्षा के लिए अर्थात् ब्राह्मण और गौ की रक्षा के लिए (न कि राष्ट्र की रक्षा के लिए) अपने प्राण तक न्यौछावर कर दें। इनकी रक्षा में प्राणों की आहूति देने वालों का खूब प्रशस्ति गान किया गया और दूसरे लोगों को भी उनका अनुसरण करने के लिए कहा गया।

खैर! इस तरह ज्यों-ज्यों, ये तथाकथित धार्मिक क्रियाएँ आगे बढ़ती हैं और भी विचित्र तथा तर्कहीन रूप धारण कर लेती हैं। उदाहरण के लिए साधना के नाम पर घंटों पानी में खड़े रहना, कीलों की शैया पर लेटना, भभूत रमाना, एक टांग पर या दोनों हाथ ऊपर उठाकर खड़े रहना तथा वानप्रस्थ या संन्यास की भावना को बिना समझे अन्य अनेक कारणों से घर छोड़ देना और साधु का वेश धारण करके 'अलख निरंजन' या ऐसा ही कुछ और कहते हुए भिक्षा माँगकर तिरस्कारपूर्ण एवं निष्क्रिय जीवन बिताना आदि कृत्य लिए जा सकते हैं। धर्म के नाम पर किए जाने वाले ऐसे कृत्यों का सबसे भयंकर रूप उस समय देखने को मिलता है जब सुनते हैं कि किसी देवी-देवता को प्रसन्न करने के लिए उसकी प्रतिमा पर किसी शिशु की बलि चढ़ा दी गई। ऊपर वर्णित इन तथाकथित धार्मिक कृत्यों में से कुछ का पर्यटन, स्वास्थ्य, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक एकजुटता आदि की दृष्टि से कभी-कभी कुछ महत्व हो सकता है लेकिन धर्म की मूल चेतना से ये सर्वथा दूर हैं। **तर्कहीन आस्थाओं या विश्वासों का यह सिलसिला ज्यों-ज्यों और भी आगे बढ़ता है तो तंत्र-मंत्र, जादू-टोने, गंडे-ताबीज तथा झाड़-फूँक जैसी क्रियाओं तक पहुँच जाता है और इस प्रकार समाज वास्तविक धर्म-मार्ग से भटक जाता है।**

धर्म के नाम पर किए जाने वाले जिन कार्यों और धर्म-प्रतीकों की चर्चा ऊपर की गई है, ऐसा नहीं है कि वे हिन्दू धर्म से बाहर दूसरे धर्मों में मौजूद न हों। ऐसे कृत्यु, कम या ज्यादा, संसार के सभी धर्मों या पंथों में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए इस्लाम में दिशा विशेष या 'किबलियात' की तरफ मुँह करके नमाज अदा करना, हज पर जाना, 'शैतान' को पत्थर मारना तथा संग-ऐ-मुकद्दस को चूमना तथा ईसाई मत के अनुयायियों द्वारा क्रॉस पहनना आदि ऐसी ही धर्म-क्रियाएँ हैं। इस्लाम के अनुयायी अपनी धर्म-क्रियाओं का सर्वाधिक कट्टरता के साथ पालन करते हैं तथा तर्क के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ते। सिखमत के अनुयायी हालांकि 'एक ओंकार' अर्थात् निराकर ब्रह्म के उपासक हैं लेकिन अपनी धर्म पुस्तक 'गुरु ग्रंथ साहब' की पूजा गुरु-मूर्त्ति के रूप में करते हैं। उसके साथ लगभग देव-प्रतिमा का-सा ही व्यवहार करते हैं। उसे सफेद स्वच्छ वस्त्र में लपेट कर रखते हैं, उसके ऊपर चँवर डुलाते हैं और माथा टिकाकर उसे नमन करते हैं। जब कभी उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं तो सिर पर रख कर ले जाते हैं और एक आदमी चँवर डुलाते हुए साथ-साथ चलता है। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि हिन्दू, ईसाई तथा इस्लाम आदि धर्मों सहित संसार के प्राय: सभी धर्म किसी ऐसी दिव्य शक्ति का अस्तित्व स्वीकार करते हैं जो इस ब्रह्माण्ड की रचना और नियमन करती है, लेकिन, उस परमसत्ता या ईश्वर की संकल्पना या स्वरूप के विषय में इनकी मान्यताओं में काफी भिन्नता पाई जाती है। यों तो मूलत: सभी उसे सर्वव्यापक और निराकार मानते हैं लेकिन कुछ उसके साकार और अवतारी रूप को भी स्वीकार करते हैं। कुछ का मानना है कि वह शक्ति किसी संदेश वाहक या पैगम्बर के द्वारा ही अपना संदेश या ज्ञान मनुष्य मात्र तक पहुँचाती है। इस प्रकार आदमी और उस परम सत्ता के बीच पैगम्बर एक मध्यस्थ की भूमिका निभाता है। ईसाई और इस्लाम धर्म में क्रमश: ईसामसीह और हजरत मुहम्मद को, उस परम सत्ता (जिसे विभिन्न भाषाओं में ईश्वर, परमात्मा, अल्लाह, खुदा या गॉड आदि नामों से पुकारा गया है) का पुत्र और संदेशवाहक माना गया है और यह भी कि भविष्य में न तो उस परम सत्ता का कोई दूसरा पुत्र होगा और न ही उसके द्वारा कोई दूसरा पैगम्बर भेजा जाएगा। ये दोनों धर्म इस बात का कोई उत्तर देने की कोशिश नहीं करते कि ईश्वर ने ये पुत्र और पैगम्बर सृष्टि के शुरू में क्यों नहीं भेजे थे और इनसे पहले के असंख्य मनुष्यों को किसके भरोसे छोड़ दिया गया था। इन तथाकथित संदेशवाहकों, पुत्रों और फरिश्तों आदि के विषय में और परमसत्ता के द्वारा इस सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में इन धर्मों में अनेक ऐसी विचित्र एवं तर्कहीन कहानियाँ प्रचलित हैं

जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हास्यास्पद हैं लेकिन इनके अनुयायी उन पर बड़ी श्रद्धा, आग्रह और कट्टरता के साथ विश्वास करते हैं। हिन्दू धर्म में पुराणों के अंतर्गत भी देवी-देवताओं से संबंधित ऐसी कहानियाँ और मान्यताएँ भरी पड़ी हैं जो तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। मान्यताओं, विश्वासों देवी-देवताओं और महापुरुषों के भेद से उक्त सभी धर्मों की बहुत-सी शाखाएँ-प्रशाखाएँ भी हैं जिन्हें मत, पंथ तथा सम्प्रदाय आदि नामों से पुकारा जाता है। अपने-अपने पंथ तथा संस्थापक को ही श्रेष्ठ मानने के आग्रह के कारण इनमें भी गहरा मतभेद रहता है जो कभी-कभी बड़े धार्मिक समुदायों की तरह रक्त-रंजित संघर्ष का रूप भी धारण करता देखा गया है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि संसार में बहुत ही कम ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्होंने इन धर्मों को अपने ज्ञान के आधार पर स्वेच्छा से ग्रहण किया हो या इनका तुलनात्मक अध्ययन करके अपने विवेक के आधार पर किसी एक को स्वीकार किया हो। वास्तविक स्थिति तो यही है कि धर्म व्यक्ति पर जन्म से ही थोप दिया जाता है या प्रलोभन अथवा बल प्रयोग के द्वारा कालांतर में बदल दिया जाता है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है अधिकांश धर्म और पंथ या सम्प्रदाय धीरे-धीरे उस परमशक्ति की अपेक्षा अवतार, पैगम्बर अथवा अपने धर्म-प्रवर्तक या गुरु को अधिक महत्व देने लगते हैं। हालांकि वे नामोल्लेख उस परमशक्ति का ही करते हैं लेकिन व्यवहार में उनकी तथाकथित धार्मिक गतिविधियों के केन्द्र उनके अवतार, पैगम्बर, संस्थापक या गुरु ही बन जाते हैं। वे अपने धर्म-प्रतीकों के धारण और सरंक्षण के लिए पूरा जोर लगाते हैं और अधिकतम प्रयत्न करते हैं कि दूसरे लोग भी उन्हीं की मान्यताओं और विश्वासों को स्वीकार करें। इस कार्य के लिए वे प्रचार तो करते ही हैं अवसर पड़ने पर प्रलोभन और बल प्रयोग का सहारा लेने से भी नहीं चूकते। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संसार की रचना और नियमन करने वाली उस परमशक्ति में विश्वास रखने के बावजूद इनकी आस्थाएँ किसी पुस्तक व्यक्ति तथा स्थान विशेष तक सीमित होकर रह जाती हैं और उस परम चैतन्य की साधना दूर की बात हो जाती है। नतीजा यह होता हे कि जिस धर्म को मनुष्य मात्र का अर्थात् सार्वभौमिक और साथ ही सार्वकालिक होना चाहिए था वह कैलाश-मानसरोवर, केदारनाथ-बद्रीनाथ तिरुपति, काबा-कर्बला, मक्का-मदीना, बैथल्हैम, येरूशलम तथा वैटिकनसिटी आदि स्थानों, राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसामसीह तथा मुहम्मद आदि महापुरुषों एवं रामायण, बाइबिल, अवेस्ता, कुरान तथा गुरुग्रंथ साहब आदि पुस्तकों में सिमट कर रह जाता है।

2013 में पुन: प्रकाशित चर्चित पुस्तकें

महर्षि दयानन्द (सचित्र)	पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति	८०.००
मेरे पिता: संस्मरण	पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति	८०.००
कल्याण मार्ग का पथिक	सं. डॉ. भवानीलाल भारतीय	१२५.००
दयानन्द लघुग्रन्थ-संग्रह	श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती	१००.००
आर्य-पर्वपद्धति	पं. श्री भवानीप्रसाद	९०.००
महात्मा आनन्द स्वामी (जीवनी)	श्री सुनील शर्मा	४०.००
वैदिक नित्यकर्म विधि	सम्पादित	६०.००
सहेलियों की वार्ता वैदिक सिद्धान्तों पर	पं. सुरेशचन्द्र वेदालंकार	२५.००
आचार्य गौरव	आचार्य ब्र. नन्दकिशोर	१५.००
यज्ञ थेरैपी	श्री संदीप आर्य	११०.००
श्रीमद्दयानन्दप्रकाश	श्री स्वामी सत्यानन्द	११०.००
पाणिनीय प्रवेशिका	श्री स्वामी समर्पणानन्द	२०.००
सामाजिक पद्धतियाँ	पं० मदनजीत आर्य	३०.००
Quest: The Vedic Answers	Sh. Madan Raheja	125.00

घर का वैद्य

फल-फूल, कन्द-मूल, पत्ता, बूटा-बूटा अपने आप में डिस्पेंसरी है-वैद्य भी, दवा भी, दवाखाना भी। जब प्रकृति की अनमोल दवाईयाँ आपको उपलब्ध हैं तो कैप्सूल-पुड़िया की क्या जरूरत। 12 ऐसी पुस्तकों का सैट जिन्हें खरीदकर आप सारी दुनिया को बांटना चाहेंगे।

घर का वैद्य-फिटकरी	२०.००	घर का वैद्य-लहसुन	२०.००
घर का वैद्य-तुलसी	२०.००	घर का वैद्य-आंवला	२०.००
घर का वैद्य-नींबू	२०.००	घर का वैद्य-हल्दी	२०.००
घर का वैद्य-नीम	२०.००	घर का वैद्य-शहद	२०.००
घर का वैद्य-हींग	२०.००	घर का वैद्य-दूध-घी	२०.००
घर का वैद्य-बरगद	२०.००	घर का वैद्य-अदरक	२०.००

2012 में प्रकाशित विचारशील साहित्य

ईश्वरीय ज्ञान वेद	प्रो. बालकृष्ण	२००.००
आर्यपथिक पं. लेखराम	प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	९५.००
उपनिषद एक सरल परिचय	श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति	९०.००
भाषा का इतिहास	पं० भगवद्दत्त जी	१५०.००
यजुर्वेद (शब्दार्थ व मन्त्रानुक्रमणिका सहित)	महर्षि दयानन्द	६००.००
सामवेद (शब्दार्थ व मन्त्रानुक्रमणिका सहित)	पं० रामनाथ वेदालंकार	६००.००
पातञ्जल योग व महर्षि दयानन्द जीवनवृत	ब्र. नन्दकिशोर	५०.००
न्याय दर्शन की मान्यताएँ	प्रो. सुन्दरलाल कथूरिया	५०.००
Makers of Arya Samaj	D.C. Sharma	100.00

मई २०१४ Registered with Regn. of News Paper for India
वेदप्रकाश R.No. 627/57 Regd. No. DL(DG)-11/8030/2012-14, U(DGO) 01/2013-14 15.07.2013

हमारे लोकप्रिय प्रकाशन

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत अमर साहित्य

दयानन्द लघुग्रन्थ-संग्रह (निम्न '*' पांच ग्रन्थ)	१००.००
यजुर्वेद भाष्य (शब्दार्थ व मन्त्रानुक्रमणिका सहित)	६००.००
सत्यार्थ प्रकाश (स्थूलाक्षरी, बड़ा साइज, उपहार संस्करण)	३२५.००
सत्यार्थ प्रकाश (सम्पादन पं. भगवद्दत्त, सजिल्द)	१५०.००
सत्यार्थ प्रकाश (अजिल्द)	८०.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	१३०.००
संस्कारविधिः (सजिल्द)	५०.००
संस्कारविधिः (अजिल्द)	४५.००
आर्याभिविनयः*	२५.००
व्यवहारभानुः*	१२.००
पञ्चमहायज्ञविधिः*	१५.००
वर्णोच्चारण शिक्षा	८.००
आर्योद्देश्यरत्नमाला*	५.००
गोकरुणानिधिः*	६.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	५.००

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती कृत सरल-सुबोध-उपदेशात्मक पुस्तकें

अमृत पान (४५ आध्यात्मिक कथाएँ)	६५.००
आनन्द गायत्री कथा	३०.००
भगवान शंकर और दयानन्द	१८.००
वैदिक सत्यनारायण व्रत कथा	२०.००
उपनिषदों का संदेश	३५.००
मानव और मानवता	६०.००
यह धन किसका है?	३५.००
दो रास्ते	३०.००
तत्त्वज्ञान	३५.००
प्रभुभक्ति	३०.००
सुखी गृहस्थ	१८.००
एक ही रास्ता	३०.००
मानव जीवन-गाथा	३०.००
भक्त और भगवान्	३०.००
घोर घने जंगल में	३५.००

प्रकाशक-अजयकुमार, मुद्रक-अजयकुमार, स्वामी-अजयकुमार, गोविन्दराम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6, अजयकुमार द्वारा सम्पादित, प्रिंटर्स-अजय प्रिंटर्स, 1586/C-13, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 में प्रिंट करा, वेदप्रकाश कार्यालय, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6 से प्रसारित किया। न्यायक्षेत्र-दिल्ली।

२०